शब्द-ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतीय साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध एवं बदलता परिवेश

अनिता नाईक (शोधार्थी)
भाषा अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
सहायक प्राध्यापक
एक्रोपोलिस इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट स्टडीज़ एंड रिसर्च
इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

मनुष्य की सभ्यता का इतिहास जितना पुराना हैं उतना ही साहित्य और संस्कृति का इतिहास भी है। मनुष्य के जीवन से भारतीय संस्कृति और साहित्य का गहरा नाता है। हमारे पूर्वजों ने संस्कृति के माध्यम से जीवन को सदैव सरल एवं सुखी बनाने का प्रयास किया है। भारतीय संस्कृति की पृष्ठ भूमि में मानव मात्र के कल्याण की भावना निहित है। भारतीय साहित्य का स्रोत वेदों को माना गया है। भारतीय संस्कृति का जन्म भी वेदों से ही माना जाता है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य पर हम दृष्टि डालें तो पाएंगे कि भारतीय साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध रहा है जैसे-जैसे समय बदलता गया साहित्य और संस्कृति में भी बदलाव आता गया है। वर्तमान की बात करें तो मनुष्य ने अपने आप को एक नए परिवेश में ढालकर पाश्चात्य संस्कृति का चोगा पहन लिया है। इस बदलती संस्कृति का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है, क्योंकि साहित्य, संस्कृति के बिना अधूरा है। कोई संस्कृति किसी साहित्य को किस तरह प्रभावित करती है अथवा कोई साहित्य किसी संस्कृति से किस प्रकार प्रेरणा ग्रहण करता है, इस पर विचार करने से ही हम जान पाएंगे कि जिस राष्ट्र की जैसी संस्कृति होती है उसका साहित्य भी उसी प्रकार के विचारों एवं भावों से युक्त होता हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में 'भारतीय साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध एवं बदलता परिवेश' पर विचार किया गया है ।

मुख्य बिंदु: *साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, मनुष्य, संबंधित रचनाकार, भारतीय भाषाएँ, पाश्चात्यीकरण।*

प्रस्तावना

साहित्य और संस्कृति का आपस में बहुत गहरा संबंध है। समाज के विकास के साथ-साथ ही साहित्य के विकास में भी वृद्धि होती है। साहित्य का विकास समाज और संस्कृति को गति प्रदान करता है एवं उसे संस्कारित करता है। साहित्य में बड़ी शक्ति होती है। वह युग परिवर्तन की क्षमता रखता है। साहित्य मनुष्य के युग-युग से संचित ज्ञान का अक्षयकोष है। साहित्य का रस जिस जीवन को मिलता है वह परिपूर्ण हो जाता है।

संस्कृति शब्द 'कृ' धातु से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं, प्रकृति मूल स्थिति से फिर यह संस्कृत हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो विकृत हो जाता है। संस्कृति की उत्पत्ति के संदर्भ में हमारे पास भले ही कोई ठोस सबूत नहीं हैं, किन्तु संस्कृति की उत्पत्ति एवं विकास मनुष्य के जीवन की एकरसता, नीरसता, अवसाद आदि का अंत करने के लिए ही हुआ होगा। मनुष्य के जीवन में

शब्द-ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

रस, खुशियाँ और मनोरंजन आदि का संचार हो तथा वह ऊर्जावान बने, एक-दूसरे से जुड़े रहें और आपस में संवाद बना रहे। यही कार्य साहित्य भी करता है। साहित्य के माध्यम से मनुष्य मात्र में संवाद होता है। इसी तरह मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति के लिए समयसमय पर आविष्कार होते रहे और वे संस्कृति के अंग बन गए। संस्कृति के गुण प्रत्येक मनुष्य में उपस्थित रहते हैं। मनुष्य का पालन पोषण किसी सांस्कृतिक पर्यावरण में ही होता है। सभी मनुष्य अपनी-अपनी संस्कृति को ग्रहण कर उसको आत्मसात कर लेता है। श्रेष्ठ साहित्य समाज के स्वरूप में परिवर्तन कर देता है।

संस्कृति अर्थात् मनुष्य के जीवन जीने की पद्धति। जिसमे मूल्य, नैतिकता, संवेदना सम्मलित है। संस्कृति को हम तीज-त्यौहार, अनुष्ठान, संस्कार आदि से हम समझ सकते हैं। साहित्य में इनकी सांस्कृतिक अभिव्यंजना भी दिखाई देती है, किन्तु केवल इनका चित्रण कर देने से ही साहित्य समृद्ध नहीं होता। कई कुशल रचनाकारों ने इन सांस्कृतिक साधनों पर महान रचनाओं का सृजन किया है जिसमें रामायण, महाभारत, कालिदास का मेघदूतम, अभिज्ञान शाकुंतलम आदि तो हैं ही, वर्तमान में प्रेमचंद का गोदान, प्रसाद का कामायनी, दिनकर का कुरुक्षेत्र और दुष्यंत के मुक्तक आदि बहुत कुछ सोचने पर विवश करते हैं।

भारतीय साहित्य और संस्कृति : अंतर्संबंध

भारतीय संस्कृति के साथ ही भारतीय साहित्य भी प्राचीन है। वेद, उपनिषद, आरण्यक आदि प्राचीन साहित्य के स्रोत हैं। भारतीय साहित्य, भारतीय भाषाओं का साहित्य है। भारतीय भाषाओं की भिन्नता के बावजूद भी साहित्य में एकता के प्रमाण मिलते हैं क्योंकि साहित्य का संबंध भाषा से अधिक समाज से होता है। इसीलिए कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, क्योंकि उसमें भारतीय लोक जीवन के विविध रूप होते हैं। जब हम किसी साहित्य को पढ़ते हैं तो अधिकतर साहित्य में भाषाओं की एक समानता या समानार्थी शब्द देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार से राम और कृष्ण लोक नायक के रूप में सभी साहित्य में देखने को मिलते हैं। हिमगिरी पर जितना गर्व हिमालयवासी करता है उतना ही केरल का समुद्र तटवर्ती मनुष्य भी। पन्नालाल पटेल, फकीर मोहन, सेनापति और प्रेमचंद ने समान समस्याओं को लेकर संघर्ष किया है। जबकि कबीर ने भक्ति का विकास दक्षिण से माना है :

‘भक्ति द्राविड़ उपजी, लाए रामानंद।
परगट किया कबीर ने सप्तदीप नवखंड।।[1]

भाषा संस्कृति की संवाहिका होती है। भारतीय साहित्य विविध भाषाओँ में रचा जाने वाला साहित्य है। रामायण, महाभारत और विविध पुराण इसी भारतीय साहित्य के अंग हैं। वैदिक साहित्य में पृथ्वी, अतंरिक्ष और सूर्य प्रारम्भिक देवता के रूप में माने जाते हैं। उपनिषद में चराचर जगत में उस परम सत्ता की स्थिति को दर्शाया गया है। वैदिक साहित्य संस्कृति के सामंजस्य प्रकृति के साथ मनुष्य के आत्मीय संबंध और वैश्विक चेतना का अद्भुत प्रतीक है। सभी भारतीय भाषाओं में मलयालम साहित्य के पिता माने जाने वाले एषुत्तच्छन ने किलिप्पाडु लिखा। नामदेव, कबीर, चैतन्य आदि की भांति हिंदी भाषा में अनुवाद हुआ है। जैसे शेक्सपियर के नाटक की पूरी वर्णमाला का अनुवाद हिंदी में रांगेय राघव ने किया है। निश्चय ही साहित्य. शब्द, अर्थ और भावनाओं की वह त्रिवेणी है, जो जनहित की धारा के साथ उच्च आदर्श की दिशा दर्शाती है। जिस प्रकार पानी की आकृति नहीं होती है, जिस साँचे में ढालो वह ढल

जाता है, उसी तरह साहित्य शब्द भी तरल है। साहित्य में कविता, नाटक, निबंध, रिपोतार्ज, जीवनी, रेखाचित्र, यात्रा वृतांत, समालोचना जैसे बहुत से साँचे हैं।

संस्कृति न केवल साहित्य की प्रेरणा स्रोत होती है, बल्कि वह साहित्य की जननी भी होती है। जिस तरह माता के अधिकांश गुण उसकी संतान में स्वाभाविक रूप से आते हैं, वैसे ही संस्कृति की अधिकांश विशेषताएं भी साहित्य में आ ही जाती हैं।

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं ईश्वर के प्रति अटूट आस्था और विश्वास, सत्य, ईमानदारी, प्रेम, दया, करुणा, ममता, विश्व-बंधुत्व की भावना, उदारता, मानवीयता, परमार्थ, गुरु एवं गुरुजनों का आदर व सम्मान, एकता, अखंडता, मातृभूमि के प्रति समर्पण कृतज्ञता, सहानुभूति की भावना आदि हैं।

भारतीय साहित्य की आधारभूत विशेषताएँ इस प्रकार से हैं : वसुधैव कुटुंबकम, सहिष्णुता, विविधता में एकता, समन्वयशीलता आदि। यहाँ जो कुछ भी कार्य होते थे वे बहुजन हिताय और बहुजनसुखी की दृष्टि से ही होते थे। इसीलिए कहा जाता है कि साहित्य जीवन का प्राण होता है। साहित्य चेतना प्रदान करता है। साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष एक प्रकार से जन, जमीन और कर्म व चिंतन प्रणाली से जुड़ा रहता है, जब साहित्य में किसी बड़े विचार का प्रवेश होता है या रचनाकार में जब चेतना जागृत होती है तो वह साहित्य सार्वभौम हो जाता है और लोक संवेदना या मानवीय मर्म के साथ सारी दुनिया को प्रभावित करता है। कोई भी कृति साहित्यकार के द्वारा लिखी जाती है तो उसका विकास धीरे-धीरे होता है और जब वह पूर्ण रचना होती है तो सभी के समक्ष प्रकाशित होकर आती है। साहित्यकार पिता है और रचना उसकी पुत्री।

“जीवन जैसे आदि से अंत तक निरंतर सृजन है वैसे ही संस्कृति भी निरंतर संस्कार क्रम है। विचार, ज्ञान, अनुभव, कर्म आदि सभी क्षेत्रों में जब तक हमारा सृजन क्रम चलता रहता है, तब तक हम जीवित हैं, ‘जीवन पूर्ण हो गया’ का अर्थ उसका समाप्त हो जाना है। संस्कृति के संबंध में भी यही बात सत्य है। परंतु विकास की किसी स्थिति में भी जैसे शरीर और अंदर के मूल तत्व नहीं बदलते, उसी प्रकार संस्कृति के मूल तत्वों को बदलना भी संभव नहीं।”[2] संस्कृति का मूल स्रोत हमारी विचार शक्ति है जो सभ्य और असभ्य में अंतर दिखाती है। साहित्य में जब हम भाषा, शैली, शिल्प, शब्द-विन्यास, संरचना आदि को देखते हैं तो वह भाषा का भौतिक स्वरूप होता है, लेकिन एक लेखक, कवि, कथाकार जब उनमें विचार रखता है, अपनी कल्पना संवेदना, सौंदर्य, प्रकृति और समाज के समस्त लोकाचारों, विश्वासों को अभिव्यक्त करता है तो वह साहित्य सृजन में संस्कृति सृजन भी करता है। सत्य, शिव और सुंदर यह तीनों शाश्वत मूल्य हैं, जो संस्कृति से जुड़े हैं। यह संस्कृति ही है जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से सत्य के समीप लाती है। यह हमारे जीवन में कलाओं के माध्यम से सत्य का सौंदर्य प्रदान करती है और सौंदर्य की पहचान कराती है। सदाचार और नैतिक गुणों की सीख के साथ हमें प्रेम सहिष्णुता और शांति का पाठ पढ़ाती हैं।

आचरण और व्यवहार की शुद्धता ही किसी समाज की संस्कृति है। संस्कृति हमारे जीवन के अंतर हृदय में व्याप्त होती है जिस प्रकार फूल के अंदर सुगंध छिपी रहती है, उसी प्रकार संस्कृति का स्वरूप है। संस्कृति को अनुभव किया जाता है। भारतीय संस्कृति के कुछ आधारभूत मूल्य इस प्रकार हैं : दया, करुणा, प्रेम, शांति, सहिष्णुता, लचीलापन, क्षमा, शीलता इत्यादि। भारतीय साहित्यकारों ने प्राचीन

शब्द-ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2023
पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

संस्कृति को धरोहर मानकर कई तरह का साहित्य लिखा है। अमीर खुसरो, कबीर, तुलसी, जायसी, मीर, गालिब दक्षिण और पूर्वोत्तर के रचनाकारों को भी अपनी-अपनी सांस्कृतिक अस्मिता मानते हैं। इसी आधार पर वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य, भक्तिकालीन साहित्य, रीतिकालीन साहित्य, आधुनिक साहित्य और उत्तर आधुनिक साहित्य के इस विकास क्रम में हिंदी साहित्य में संस्कृति के रूपों की पहचान कर सकते हैं।

आदिकाल से प्रारंभ करें तो उस समय बौद्धों और ब्राहमणों के बीच एक खाई बन गई थी। भक्तिकाल आते-आते समाज में बहुत विभिन्नता व्याप्त हो गई थी। भक्तिकालीन समाज में सामाजिक स्थिति का चित्रण तुलसी साहित्य में बखूबी हुआ है। समाज में व्याप्त जाँति-पाँति व्यवस्था के विरोध में कहते हैं :

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपुतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सो, बेटा न ब्याहव, काहू की जाति बिगारन सोऊ।[3]

तुलसीदास ने रामचरित मानस में भी हमारी संस्कृति के उच्च आदर्शों को स्थापित किया है। रीतिकाल में श्रृंगार परक रचनाएँ लिखी गई। कुछ कवियों ने नैतिकता के संदर्भ में भी काव्य की रचना की। इसके बाद जब अंग्रेजों का समय रहा तब भारतीय संस्कृति को बचाने के लिए साहित्य के माध्यम से लोगों को जागृत किया। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' की रचना की। जयशंकर प्रसाद ने 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' जैसे नाटकों की रचना की। प्रेमचंद ने उपन्यासों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का चित्रण किया। स्वतंत्रता के पश्चात भारत को विभाजन का दर्द सहन करना पड़ा। जैसे-जैसे भारत विभाजन की त्रासदी से उभरा कि भारत का राजनीतिक परिदृश्य बदलने लगा। इसने अनेक जातीय समीकरणों धार्मिक, भाषायी समस्याओं को जन्म दिया। प्रांतवाद का जहर फैलने लगा। साहित्यकारों ने इसे अपने साहित्य में स्थान दिया।

स्वातंत्र्योत्तर परिस्थिति और साहित्य

स्वतंत्रता के बाद सामाजिक परिस्थितियाँ भी तेजी से बदल रही थीं। संस्कृति के नाम पर नए मूल्यों व मान्यताओं को स्थापित करने के कारण भारतीय संस्कृति में बिखराव होने लगा। साथ ही अंग्रेजी साहित्य एवं पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भी भारत में बढ़ा। लोगों को कई नई समस्याओं का सामना करना पड़ा। घुटन, त्रासदी, निराशा और आशा के मध्य झूलते लोगों की आवाज को साहित्य ने पहचाना और भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में सहायता की। इसमें प्रमुख कवि व लेखक थे 'निराला', पंत, महादेवी वर्मा, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र आदि। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात लिखी गई कविता 'मेरे नगपति ! मेरे विशाल! हिमालय के प्रति' में रामधारी सिंह 'दिनकर' ने गौरवशाली भारत वर्ष का स्मरणकर अतीत के चित्रों की कल्पना और आदर्श की प्रचुरता के साथ वर्तमान के संदर्भ में यथार्थवादी दृष्टि और अनुभूति की सच्चाई को दिखाया है।

मेरे नगपति ! मेरे विशाल! साकारए दिव्य गौरव विराट।
पौरुष के पूंजी भूत ज्वाल मेरी जननी केहिम दृ किरीट।[4]

भारतीय संस्कृति को जीवित रखने का प्रयास किया और कवि ने अपने गौरवमय अतीत का स्मरण कर उसका वर्तमान में सामंजस्य स्थापित कर युवाओं को जागृत करने की बात कही है।

इक्कीसवीं सदी में संस्कृति और सामजिक परिवर्तनों से जहाँ भारतीय संस्कृति के सत्य, प्रेम, त्याग, करुणा सहयोग, नैतिकता, मानवता, नारी के प्रति श्रध्दा आदि के स्थान पर घृणा, स्वार्थ, द्वेष, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और अमानवीयता का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप भारतीय संस्कृति का विघटन हो रहा है। श्यामाचरण दुबे ने इसे संक्रमण की पीड़ा की संज्ञा देकर लिखा है, "एक ही समय में दो विपरीत ध्रुवों के आकर्षण ने उसमे लक्ष्य सम्भ्रम उत्पन्न कर दिया है और साधनों की भौतिकता को संशय के घेरे में खड़ा कर दिया है। एक ओर पश्चिम की जीवन शैली का सम्मोहन है, दूसरी ओर सांस्कृतिक अस्मिता के आग्रह हैं।"[5]

वर्तमान समय भूमंडलीकरण के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण सारा विश्व बाजार के रूप में स्थापित हो चुका है। इस बाजारवाद से आज समाज का कोई क्षेत्र अछूता नहीं है। बाजारवाद का प्रभाव साहित्य, समाज, सिनेमा आदि क्षेत्रों में देखने को मिलता है। मानवीय संबंधों, भावनाओं और संवेदनाओं पर बाजारवाद हावी है। वर्तमान में मीडिया में, साहित्य में विभिन्न मंचों पर उत्तर आधुनिकता पर चर्चा, परिचर्चा और बहस होती आ रही है। डॉक्टर सुधीर पचौरी ने बाजारवाद के इस उत्तर आधुनिकता की संकल्पना के अति विस्तार को साहित्य के संबंध में कहा है कि "भारत में शुरू होने वाला अस्मिता विमर्श, दलित विमर्श, भाषा संचेतना आदि की स्वीकार्यता उत्तर आधुनिकता को स्वीकारता है। यह सच है उत्तर आधुनिकता के इस दौर में साहित्य में, समाज में या फिर फिल्मों में व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मनमाने अवसर, मनमाने ढंग से तलाशे गए हैं। समाज में भी एक-दूसरे से अधिक आधुनिक होने की दौड़ ने हमारे जीवन मूल्यों पर दबाव बनाने की स्थिति में पहुंचा दिया है। मूल्यहीनता ने भी इंसानी वजूद को बौना साबित कर दिया है। अब इंसान ग्रह का नियंता और ईश्वर की सबसे खूबसूरत रचना नहीं, बल्कि स्वयं को उपभोक्ता मानता है। यहां सब के लिए सब कुछ है, लेकिन फिर भी किसी को कुछ हासिल नहीं होता। उत्तर आधुनिकता के इस कालखंड को सकारात्मक पहचान देने के लिए स्वस्थ और सार्थक बहस को परिणाम तक पहुंचाना ही होगा।"[6] यहां तक कि अन्य चीजों की तरह आज ज्ञान का भी बाजारीकरण हो गया है। "आज बाजार का दबाव बढ़ रहा है। आज यदि बाजार के खिलाफ भी लिखा जाना है तो वह बाजार की समझी जाने वाली शैली और भाषा में। बाजार को परास्त करने के लिए बाजार के उपकरण ही काम में लाए जाने चाहिए। बाजार हुए बगैर पुरानी फ्रेम को तोड़कर तस्वीर लगाई जानी है तो नई और चमकती फ्रेम के साथ। तस्वीर भी स्पष्ट, साफ़ और आधुनिक या कहा जाना चाहिए नई होनी चाहिए।"[7] भारतीय संस्कृति के मूल्यों की गिरावट की स्थितियों का वर्णन राजेश जोशी 'चाँद की वर्तनी' में बाजार के खतरे की ओर इशारा करते हुए कहते हैं "बाजार पहले चुरा चुका था हमारी जेब में रखे सिक्कों को। और अब सौदा कर रहा था हमारी भाषा का और हमारे सपनों का।"[8] पश्चिमी संस्कृति व बाजारवाद उत्तर आधुनिकता से प्रभावित होकर भारतीय समाज का ऐसा उच्च वर्गीय समूह के दैहिक सुख, भौतिक सुविधाएं, अधिकार का निरंकुश व्यवहार और इन सब का आधार अर्थ संचय आदि बातों को महत्व देता आ रहा है।

हमारी संस्कृति में यह एक भयावह वास्तविकता पैदा हो गई है। घर से टूटे उखड़े व्यक्तियों का अकेलापन और दर्द चिरंतन दर्द मानकर चित्रित करने की रूढी भी हिंदी साहित्य में स्थाई होती जा रही है। यह घर टूटने की स्थिति नगर में जीवन यापन करने वालों में अधिक तीव्र रूप में दिखाई देती है।

उदारीकरण और भूमंडलीकरणके बाद समाज में कई बदलाव हुए जिसका प्रभाव संस्कृति एवं साहित्य पर भी पड़ा। बाजारवाद ने प्रत्येक वस्तु को बिकाऊ, यहाँ तक कि शरीर, आत्मा और मूल्यों तक की बोलियाँ लग जाने को अभिशप्त किया। पाखंड, धूर्तताओं, चालाकियां और सांस्कृतिक प्रदूषण के बढ़ने के साथ समाज का अवमूल्यन हुआ है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय संस्कृति सदैव वसुदेव कुटुंबकम की पोषक रही है। अहिंसा उसका मूल मंत्र माना जाता रहा है। तुलसीदास मध्यकाल में भारतीय साहित्य संस्कृति के समन्वयक के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं। भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य का अपना स्वतंत्र एवं विशिष्ट महत्त्व है जो अपने देश के व्यक्तित्व को उसकी संस्कृति की पहचान कराता है। जैसे तमिल का संगम साहित्य, तेलुगू के अर्थ की काव्य और उदाहरण तथा अवधान साहित्य, मलयालम के संदेश काव्य एवं कीर गीत (कलिप्पट्ट) तथा मणि प्रवालम शैली, मराठी के पोवाडा, गुजराती के आख्यान और फागु, बंगला का मंगल काव्य, असमिया के बड़गीत और बुरंजी साहित्य, पंजाबी के रमाख्यान तथा वीरगति, उर्दू की गजल और हिंदी का रीति काव्य तथा छायावाद आदि अपने-अपने भाषा साहित्य की विशेषता है। इसीलिए कहा जाता है विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है, परंतु वर्तमान की स्थिति में हमारी संस्कृति की चिंता है कि विविधता हमारी एकता को खंडित करने का प्रयास कर रही है। भाषा को लेकर आए दिन आपस में झगड़े होते रहते हैं। समय के साथ-साथ संस्कृति में भी परिवर्तन आते रहे हैं और उसी के आधार पर साहित्य लिखा जा रहा है।

'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक की भूमिका में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि"भारत की संस्कृति आरंभ से ही सामासिक रही है। उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम देश में जहां भी हिंदू बसते हैं उनकी संस्कृति एक है एवं भारत के प्रत्येक क्षेत्रीय की विशेषताएं हमारी इसी सामासिक संस्कृति की विशेषता है। तब हिंदू और मुसलमान हैं, जो देखने में अब भी दो लगते हैं किंतु उनके बीच भी सांस्कृतिक एकता विद्यमान है, जो उनकी भिन्नता को कम करती है। दुर्भाग्य की बात है कि हम इस एकता को पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ रहे हैं। यह कार्य राजनीति नहीं शिक्षा और साहित्य के द्वारा संपन्न किया जाना चाहिए। इस दिशा में साहित्य के भीतर ही कितने छोटे-बड़े प्रयत्न हो चुके हैं"[9]

भारतीय संस्कृति और साहित्य से प्रेरित होकर जनमानस में सदाचार का दर्शन प्राप्त हुआ, आदिकाल ऋग्वेदकाल से एक सच्चे भारतीय को जो सच्चे नागरिक की कसौटी पर कसकर एक सतपुरुष के सांचे में ढ़ाला गया। यह विश्व की किसी संस्कृति में नहीं पाया जाता है। 'मातृ देवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्य देवो भव', 'अतिथि देवो भव' के दर्शन हुए इसलिए वर्तमान युग में भारत के प्रत्येक घर और परिवार में प्राचीन संस्कृति को जीवित रखने के लिए घर-घर में प्राचीन साहित्य का अभ्यास प्रचलन में लाना होगा। युवाओं को भारतीय संस्कृति से शिक्षित कर बताना होगा कि हमारे धर्मशास्त्रों में कितना सुंदर दर्शन हमें दिया कि माता-पिता, आचार्य एवं अतिथि यह देव तुल्य होते हैं और इनकी तन-मन-धन से सेवा करना हर भारतवासी का कर्तव्य है। हमारे धर्मशास्त्रों में एक और अमूल्य उपहार के रूप में 'वसुधैव कुटुंबकम' का सूत्र देकर भारतीय दर्शन को विश्व स्तर पर श्रेष्ठता के चरम पर स्थापित कर दिया है।

स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य और संस्कृति का अंतर्संबंध एवं बदलते परिवेश से मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित होता आया है। भारतीय साहित्य और संस्कृति भी अछूती नहीं है। साहित्यकारों के द्वारा संस्कृति की रक्षा के लिए और साहित्य का प्रचार करने के लिए साहित्य लिखा जाता रहा है। यह परंपरा निरंतर चलती रही है और साहित्य संस्कृति से जुड़ा रहे यही साहित्य की उत्कृष्टता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 भारतीय साहित्य, डॉ.लक्ष्मीकांत पांडे और डॉ प्रमिला अवस्थी, पृष्ठ 34

2 भारतीय संस्कृति के स्वर, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 23

3 कवितावली, तुलसीदास, संस्कृत 2017

4 मेरे नगपति! मेरे विशाल! कविता, रामधारी सिंह दिनकर

5 संक्रमण की पीड़ा, श्यामाचरण दुबे पृष्ठ 23

6 उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, डॉ. सुधीर पचौरी

7 यथार्थ की यात्रा कथा वैचारिकी, भालचंद्र जोशी, अन्यथा अंक19, पृष्ठ 85

8 चांद की वर्तनी, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन 2006, पृष्ठ 85

9 संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, तृतीय संस्करण पृष्ठ 8